P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-6 * (Part-1) February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्रसाद के नाटकों में भाशा का औदात्य

साधना त्रिपाठी
वरिष्ठ प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
दयानन्द बछरावां पी0जी0 कालेज,
बछरावां, रायबरेली, भारत

सारांश

बाबू जय शंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में सर्जनात्मक प्रतिभा धनी साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं। काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा चिन्तन परक निबन्धों के क्षेत्र में उनका प्रदेय कालजयी है। प्रसाद जी का सम्पूर्ण सृजन कर्म उदात्त जीवन मूल्यों के संपोषण एवं संरक्षण का ज्वलन्त उदाहरण है।

भाषा के क्षेत्र में उनकी उदात्तता उनके कृतित्व में आद्योपान्त द"र्शनीय है। उनके नाटकों की भाषा सर्वदा विचार एवं भाव के अनुकूल है। उनके शब्द चयन में दे"ाकाल, पात्रों के भावों एवं संस्कृति को पूर्ण महत्व मिला है। वे प्रसंगानुसार संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग करने में सिद्ध हस्त हैं। पात्रानुकूल मनोवृत्तियों के सफल एवं जीवन्त चित्रण हेतु उनके पास भाषा का अमोघ शब्द भण्डार था। दा"र्निक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सुबोध दा"र्निक शब्दावली तथा मानव मन की अतल गहराइयों को प्रतिविम्बित करने के अवसर पर तदानुकूल शब्दावली देखते ही बनती है।

कहीं–कहीं अवसरानुसार वे तद्भव, दे"ाज, उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं नि"चय ही प्रसाद जो के नाटको की भाषा उनके उदात्त विचार एवं उदात्त भावाभिव्यक्ति का उदात्त माध्यम है।

मुख्य शब्द : औदात्य, भावानुकूल, संस्कृतनिष्ठ, प्रतीकात्मक, भावाभिनय, अर्थगौरव।

प्रस्तावना

जय शंकर प्रसाद जी के नाटक आधुनिक हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। उनके विविध पक्षों पर अबतक अनेक दृष्टियों से अध्ययन हो चुका है। उनकी भाषा विषयक अवधारणा भी उनकी उदात्त भाववृत्ति से अनुप्राणित है। यहां उनके सम्पूर्ण नाट्य वाङमय का अनु"ीलन भाषिक सौष्ठव पर आधारित है।

प्रसाद ने अपने नाट्य साहित्य में भावानुकूल स"ाक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। इनके नाटकों में जीवन एवं द"र्न के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है। अतः उनकी भाषा भी विषयानुकूल संस्कृतनिष्ठ एवं गम्भीर हो गयी है। प्रसाद की प्रारम्भिक नाट्य कृतियों की भाषा अधिक प्रौढ़ एवं गम्भीर तथा विषयानुकूल है क्योंकि प्रसाद की नाट्य–वस्तु के अनुसार उनकी भाषा में विकास क्रम के द"र्न होते हैं। उनकी नाट्य–भाषा का वास्तविक स्वरूप– ''अजात"ात्रु, स्कंदगुप्त और चन्द्रगुप्त तथा प्रतीकात्मक नाटक कामना और एक घूँट में ही उपलब्ध होता है जिसमें काव्य और द"र्न का मंजुल मिश्रण है और वह उदात्त भावनाओं और गहन विचारों को व्यक्त करने में सक्षम है।''[1]

आलोचकों ने प्रसाद के नाटकों की भाषा पर यह आक्षेप किया कि वह पात्रानुकूल नहीं है, अपितु वह एकरस एवं टकसाली है। वह काव्य तथा दा"र्निक भावों की गहनता से बोझिल है। उसमें पात्र एवं उसकी मानसिक द"ाा के अनुकूल परिवर्तन नहीं है। ऐसे आक्षेपों का उत्तर स्वयं प्रसाद जी ने इस प्रकार दिया है – ''भाषा की सरलता की पुकार भी कुछ ऐसी ही है। ऐसे द"र्काें एंव सामाजिकों का अभाव नहीं, किन्तु प्रचुरता है, जो पारसी स्टेज पर गायी गयी गजलों के शब्दार्थों से अपरिचित रहने पर भी तीन बार तालियां पीटते है। क्या हम नहीं देखते कि बिना भाषा के अबोल चित्रपटों के अभिनय में भाव सहज ही समझ में आते हैं और कथकली के भावाभिनय भी शब्दों की व्याख्या ही हैं? अभिनय तो सुरूचिपूर्ण शब्दो को समझाने का काम रंगमंच से अच्छी तरह करता है। एक मन यह भी है कि भाषा स्वाभाविकता के अनुसार पात्रों की अपनी होनी चाहिये और इस तरह कुछ देहाती पात्रों से उनकी अपनी भाषा का प्रयोग कराया जाता है। मध्यकालीन भारत में जिस प्राकृत का संस्कृत से सम्मेलन रंगमंच पर कराया गया था, वह बहुत कुछ परिमार्जित और कृत्रिम सी थी। सीता इत्यादि भी

संस्कृत बोलने में असमर्थ समझी जाती थीं। वर्तमान युग की भाषा सम्बन्धी प्रेरणा भी कुछ–कुछ वैसी ही है। किन्तु आज यदि कोई मुगलकालीन नाटक में लखनवी उर्दू मुगलों से बुलवाता है, तो वह भी स्वाभाविक या वास्तविक नहीं है। फिर राजपूतों की राजस्थानी भाषा भी आनी चाहिए, यदि अन्य असभ्य पात्र हैं तो उनकी जंगली भाषा भी रहनी चाहिए और इतने पर भी क्या वह नाटक हिन्दी का ही रह जायेगा''[2]? प्रसाद के इस कथन से स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने भाषा विषयक आक्षेपों को निराधार और नाट्य–भाषा के स्वाभाविक विकास में बाधक स्वीकार किया है। नाटक की भाषा कैसी होनी चाहिए, इस विषय में भी उनके विचार दृष्टव्य हैं– ''मैं तो कहूँगा कि सरलता और क्लिष्टता, पात्रो के भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए किन्तु इसके लिए भाषा की एकतंत्रता नष्ट करके कई तरह की खिचड़ी भाषाओं का प्रयोग हिन्दी नाटकों के लिए ठीक नहीं। पात्रों की संस्कृति के अुनसार उनके भावों और विचारों में तारनभ्य होना भाषाओं के परिवर्तन से अधिक उपर्युक्त होगा दे"ा और काल के अनुसार भी सांस्कृतिक दृष्टि से भाषा में पूर्ण अभिव्यक्ति होनी चाहिए।''[3]

प्रसाद जी पात्रों के विचार एवं भावों के अनुकूल भाषा के समर्थक और भाषा की एकतंत्रता के प्रबल पक्षधर भी हैं। नि"चय ही प्रसाद की भाषा का वाह्य रूप एक सा प्रतीत होता हुआ भी उसका अन्तर विचार एवं भाषा के अनुकूल है।

प्रसाद की भाषा विचार एवं भाव की अनुकूल अभिव्यक्ति का ज्वलंत निद"ान है। उनके नाटकों में सरस भावों के चित्रण में अपूर्व सफलता मिली है। भावानुकूल सरस शब्दावली के संचयन से शैली में अनुपम औदात्य आ गया है, अभिव्यक्ति अति मार्मिक एवं रमणीय हो गयी है। अजात"ात्रु में बाजिरा के प्रति अजात के प्रणयोद्गार कैसी मार्मिकता के साथ प्रकट हो रहे हैं– ''इस श्यामा रजनी में चन्द्रमा की सुकुमार किरण–सी तुम कौन हो? सुन्दरी कई दिनों मैने देखा, मुझे भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है। किन्तु नहीं, अब मुझे वि"वास है कि भगवान ने करूण मूर्ति मेरे लिए भेजी है और इस बन्दीगृह में भी कोई उसकी अप्रकट इच्छा कौ"ाल कर रही है।''[4]

प्रसाद मूलतः कवि है, अतः प्रणय भावनाओं के चित्रण में उनका कवि रूप सदैव सजग रहा है। स्कन्दगुप्त को अपने रूप यौवन से व"ा में करने की चेष्टा करती हुई विजया कहती है – ''प्रियतम! यह भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय विलास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत है। उन्मुक्त आका"ा के नील नीरद मण्डल में दो विजलियों के समान क्रीडा करते–करते हम लोग तिरोहित हो जायें।''[5]

कोमल भावों के समान उत्साह, क्रोध आदि भावों को अनुपम उत्कर्ष के साथ चित्रित करने में प्रसाद के नाटकों की भाषा में विलक्षण क्षमता है। युद्ध की अग्नि में कूदने के लिए उत्सुक राज्यवर्धन मृत्यु की विभीषिका की चिन्ता न करते हुए कहता है– ''राज्यवर्धन वह राख का ढ़ेर नही, जो शत्रु सुख के पवन से धधक न उठे। यह ज्वाला है, उत्तरापथ को जला कर शान्त होगी।''[6]

जहां प्रसाद के नाटकों में जीवन, जगत एवं नियतिवाद, कर्मवाद, योगवाद और आनन्दवाद जैसे दा"ानिक विषयों का विवेचन है, वहां विषय के अनुकूल भाषा में गाम्भीर्य आ गया आर स"ाक्त तत्सम शब्दावली दा"ानिक नाटककार की अभीष्ट सिद्धि में पूर्ण सफल रही है। बिम्बसार संसार की क्षणभंगुरता तथा मानव के अहंकार और स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर चारो ओर व्याप्त अ"ाान्ति और संघर्ष को देखकर विचार करता है– ''आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आका"ा के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे–धीरे लुप्त होने लगते है, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है और जीवन–संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकाण्ड ताण्डव करता है।''[7]

प्रसाद के नाटको में उनकी गीत सृष्टि काव्य की अनुपम निधि है। इन गीतों में नाटककार कवि ने ऐसी गरिमामयी उपयुक्त शब्दावली का संचयन किया है कि पात्रों के मनोभाव साक्षात् मूर्तिमान हो उठे हैं। राक्षस के प्रति प्रणयपूरित हृदया सुवासिनी का यह गीत–

तुम कनक किरण के अंतराल में,
लक–छिपकर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस कन ढरते।
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों?[8]

इस प्रकार प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा सर्वत्र एक रूप नहीं है, अपितु वह भावों के अनुसार परिवर्तित होती गयी है। अभी तक हमने भाव एवं विचारों के अनुसार भाषा के स्वरूप का अध्ययन किया है। अब हम पात्रों के अनुसार विविध रूप भाषा का अध्ययन करेंगे।

प्रसाद के नाटकों में तीन प्रकार के पात्र हैं– प्रथम प्रकार के वे पात्र है जो सन्त प्रकृति के दा"ानिक व्यक्ति है, द्वितीय प्रकार के वे पात्र हैं जो उच्च वर्गीय राजा, मंत्री, सेनापति आदि सुसंस्कृत है। कुछ विदुषी महिलाएं भी इसी वर्ग में आती हैं। तृतीय प्रकार के वे पात्र है– जो साधारण निम्नवर्गीय सेवक, सेविका, सामान्य सैनिक, नागरिक आदि हैं। यद्यपि प्रसाद सर्वत्र संस्कृतनिष्ठ एवं व्याकरण संयत भाषा का प्रयोग करते हैं तथापि उनकी भाषा पात्र के अनुसार सर्वत्र परिवर्तित हो जाती है। प्रायः उनके प्रत्येक नाटक में कोई न कोई एक दा"ानिक व्यक्ति अव"य होता है जिसके माध्यम से वे उनके दा"ानिक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए राज्यश्री मे दिवाकर मित्र, वि"ााख में प्रेमानन्द, अजात"ात्रु में गौतम बुद्ध, नागयज्ञ में व्यास, चन्द्रगुप्त में दाण्ड्यायन एवं चाणक्य, स्कन्दगुप्त में प्रख्यातकीर्ति एवं ध्रुव स्वामिनी में मिहिरदेव ऐसे ही पात्र हैं जो अपने नैतिक एवं दा"ानिक विचारों को अभिव्यक्त करते हुए सामान्य मानव के कल्याण एवं मार्गद"ान के लिए दत्तचित्त हैं।

इनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक क्लिष्ट एवं संस्कृतनिष्ठ तथा गम्भीर हो गयी है।

निश्कर्श

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रसाद के नाटकों की भाषा सर्वदा विचार एवं भाव के अनुकूल है। नाटककार ने शब्द चयन में दे"ाकाल पात्रों के भाव एवं संस्कृति को पूर्ण महत्व दिया है। यही कारण है कि उनके ऐतिहासिक नाटकों में दे"ाकाल एवं संस्कृति के अनुसार संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग हुआ है। उनके नाटकों की भाषा में काव्य की गरिमा है। विचारों का बाहुल्य है तथा जीवन द"र्ान की विविध स्थलों पर सरस अभिव्यक्ति हुई है। उनके नाटकों की भाषा में विकास की परम्परा अन्तर्निहित है जो प्रारम्भिक रचनाओं मे औदात्य की दृष्टि से दुर्बल है, परन्तु शनैः शनैः स"ाक्त होती गयी है। प्रसाद का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाषा को भाव एवं विचार के अनुकूल परिवर्तित करने की उनमें अनुपम क्षमता है। जीवन जगत विषयक विभिन्न सिद्धांतों एवं पात्रानुकूल नाना मानव मनोवृत्तियों के सफल चित्रण के लिए उनके पास अमोघ शब्द भण्डार था। अनेक पर्यायों में से प्रसंगानुकूल प्रभावक शब्दावली के संचयन में वे पूर्ण निष्णात थे। भावों एवं विचारों को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान करने की उनकी भाषा में अद्भुत क्षमता है। भावानुकूल गुणाभिंव्यंजक वृत्तियो की नियोजना से उनके नाटकों में वि"ोष रमणीयता आ गयी है। उनकी नाट्य कृतियों में दे"ाकाल एवं संस्कृति के अनुसार स्थान–स्थान पर विविध दा"र्ानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सुबोध दा"र्ानिक शब्दावली का चयन किया गया है। प्रसाद का कवि रूप उनके समग्र नाट्यसाहित्य को सरस एवं प्रेषणीय बनाने में अत्यन्त सहायक रहा है। तत्सम शब्दावली के पक्षधर होकर भी प्रसाद ने तद्भव, दे"ाज एवं उर्दू, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके अपनी भाषा को स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल बनाया है। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों की भाषा महान साहित्यकार की भाषा है जिसका संस्कृतनिष्ठ रूप भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। उनका शब्द चयन विचार एवं भाव को उत्कर्ष के साथ रूपायित करने में सक्षम है। उनके नाटकों में प्रयुक्त स"ाक्त एवं गरिमामयी शब्दावली में उनके भाव एवं विचारों की पूर्ण आवेण के साथ अभिव्यक्त करने की विलक्षण शक्ति है। उनकी शैली में कालिदास की भावुकता एवं भारवि के अर्थ गौरव के द"र्ान सहज ही हो जाते हैं। नि"चय ही उनके नाटकों की भाषा उनके उदात्त विचार एवं उदात्त भावाभिव्यक्ति का एक उदात्त माध्यम है।

अंत टिप्पणी

1. *डॉ0 राम सेवक पाण्डेय– प्रसाद की नाट्य कला, पृ0 287–88*
2. *काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ0 106–107*
3. *काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ0 106–107*
4. *अजात"ात्रु, पृ0 108*
5. *स्कन्दगुप्त, पृ0 1037*
6. *राज्यश्री, पृ0 35*
7. *अजात"ात्रु, पृ0 27*
8. *चन्द्रगुप्त, पृ0 45–55*